

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 38 — अक्रूरजी का व्रज-आगमन

5 October 2026



अत्याचारी की आज्ञा लेकर मथुरा से निकले अक्रूरजी सारा मार्ग भगवत्-स्मरण में बिताते हैं — और सन्ध्या होते-होते व्रज की धूल में श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न पा जाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञप्ति में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह अड़तीसवाँ अध्याय लगभग पूरा एक ही भक्त के अन्तर्जगत् की कथा है। कंस द्वारा दोनों भाइयों को मथुरा लाने भेजे गए अक्रूरजी सारा दिन स्वयं से यही विवाद करते चलते हैं कि उन-जैसे व्यक्ति को प्रभु का दर्शन मिल भी सकता है या नहीं — और अन्त में उन्हें जो मिलता है, वह भागवत का अपना चित्र है कि तड़प जब अपने लक्ष्य से मिलती है तो क्या होता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

- अध्याय: 38 (अड़तीसवाँ अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: वृन्दावन में अक्रूरजी का आगमन
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: मथुरा से नन्द के गोकुल तक का मार्ग, और सन्ध्या-बेला का व्रज
- केंद्रीय विषय: मार्ग पर अक्रूरजी का चिन्तन, व्रज की धूल में चरण-चिह्न, प्रथम दर्शन और आलिंगन, तथा नन्दजी का आतिथ्य
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 38, श्लोक 1-43
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कन्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

सैंतीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने अश्व-रूपधारी केशी का संहार किया, देवर्षि नारद की आनन्दभरी स्तुति सुनी, और मायावी व्योमासुर को परास्त कर गुफा में बन्द ग्वालबालों को मुक्त किया। उधर मथुरा में कंस ने अक्रूरजी को दोनों भाइयों को धनुष-यज्ञ में लाने का भार सौंपा था।

अक्रूरजी व्रज के लिए प्रस्थान करते हैं

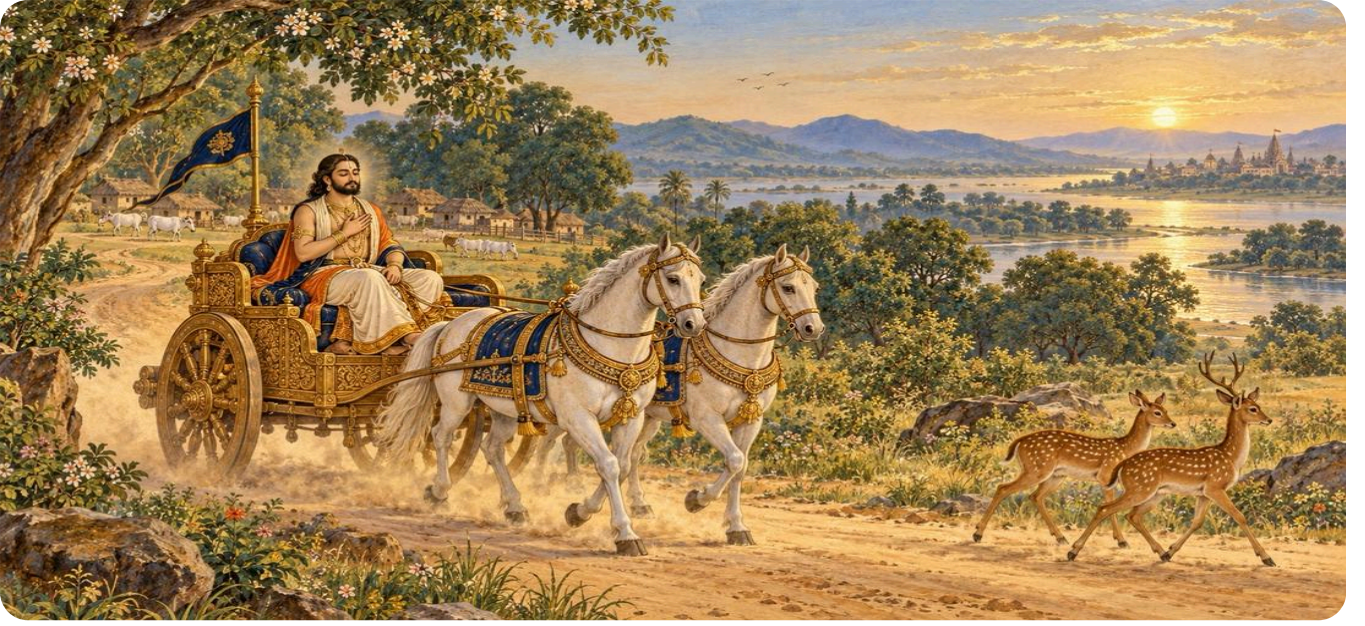
मधुपुरी मथुरा में वह रात बिताकर महामति अक्रूरजी रथ पर सवार हुए और नन्द के गोकुल की ओर चल पड़े। यात्रा राजा के काम से थी, किन्तु हृदय का अपना ही काम था। ज्यों-ज्यों मार्ग खुलता गया, कमलनयन भगवान् के प्रति परा भक्ति उनके भीतर उमड़ती गई, और वे विस्मय से स्वयं से तर्क करने लगे।

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।

किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥

*kiṁ mayācaritaṁ bhadraṁ kiṁ taptaṁ paramaṁ tapaḥ kiṁ vāthāpy arhate dattaṁ yad
drakṣyāmy adya keśavam*

अर्थ: मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया है, कौन-सा परम तप तपा है, अथवा किसी सुपात्र को कौन-सा दान दिया है, जिसके फलस्वरूप आज मैं श्रीकेशव के दर्शन करूँगा? (स्कन्ध 10, अध्याय 38, श्लोक 3)



मथुरा में रात बिताकर अक्रूरजी नन्दजी के गोकुल की ओर चल पड़ते हैं, और सारे मार्ग उनके भीतर कमलनयन भगवान् के प्रति परा भक्ति उमड़ती जाती है।

एक तड़पते हृदय का तर्क

उन्होंने अपने ही प्रश्न का कठोर उत्तर दिया। जिसका मन विषयों के पीछे दौड़ता हो, उसके लिए उत्तमश्लोक का दर्शन उतना ही दुर्लभ है जितना जन्म से अनधिकारी के लिए वेद-पाठ। फिर वे सँभल गए। नहीं, ऐसा नहीं सोचना चाहिए — मुझ अधम को भी अच्युत का दर्शन हो सकता है; काल की धारा में बहता मनुष्य भी कभी-न-कभी उस पार लग ही जाता है।

आज मेरा सारा अमंगल नष्ट हो गया और जन्म सफल हो गया, उन्होंने स्वयं से कहा, क्योंकि आज मैं उन चरण-कमलों में प्रणाम करूँगा जिनका योगीजन ध्यान करते हैं। फिर वह विचार उठा जिसने सारा कार्य ही उलट दिया — कंस ने, हाँ उसी कंस ने, आज मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है। उसी के भेजे हुए मैं अवतीर्ण श्रीहरि के उन चरण-कमलों का दर्शन करूँगा, जिनके नखों की आभा से प्राचीन काल में लोग दुस्तर अज्ञान-अन्धकार के पार उतर गए; जिनकी पूजा ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मीजी और मुनिजन करते हैं; जो गौओं के पीछे वन में विचरते हैं और व्रज की गोपियों के कुंकुम से रँगें हैं। मैं मुकुन्द का वह मुख देखूँगा — घुँघराली अलकों से ढका, मुस्कान भरी अरुण कमल-सी आँखों वाला; मृग भी मेरी दायीं ओर से जा रहे हैं, प्रातः से सब शकुन अनुकूल हैं।

वे कारण और कार्य दोनों के साक्षी हैं, अक्रूरजी ने विचार किया, अहंभाव से रहित; अपने ही तेज से अज्ञान और भेद-भ्रम को मिटाए हुए, फिर भी स्वयं को उन्हीं जीवों के लिए प्राप्य बना देते हैं जिन्हें उनकी माया ने प्राण, इन्द्रिय और मन देकर रचा है। उनकी लीलाओं से मिली वाणी संसार को पवित्र कर देती है, और उनसे विमुख वाणी कितनी ही अलंकृत क्यों न हो, सजे शव के समान है। वही भगवान्, अपने ही बनाए धर्म की रक्षा हेतु सात्वत-वंश में अवतीर्ण होकर, उस घड़ी व्रज में निवास कर रहे थे।

अक्रूरजी ने उन चरणों से क्या-क्या आशा की

कोस-दर-कोस वे उस मिलन का अभ्यास करते रहे। रथ से उतरकर वे उन दोनों आदिपुरुषों के चरणों में प्रणाम करेंगे, जिन्हें योगीजन केवल ध्यान में धारण करते हैं, नेत्रों से कभी नहीं देखते; और उनके साथ ग्वाल-सखाओं तथा व्रजवासियों का अभिवादन करेंगे। क्या भगवान् मेरे झुके सिर पर अपना वही कर-कमल रखेंगे, जो काल-सर्प के वेग से भयभीत शरणागतों को अभय देता है — वही हथेली जिसने कौशिक और बलि

को तीनों लोकों का ऐश्वर्य दिलाया, और जिसके सौगन्धिक स्पर्श ने रास के समय ब्रज-वनिताओं की थकान हर ली थी?

अपने दूतकर्म की चिन्ता उन्हें क्षण भर ही रही। श्रीकृष्ण भीतर-बाहर सब मनो को निर्मल दृष्टि से देखने वाले क्षेत्रज्ञ हैं; वे कंस के सन्देश के कारण दूत को शत्रु नहीं मानेंगे। यदि वे मुझ पर — चरणों में गिरे, हाथ जोड़े, मन थामे मुझ पर — स्नेहार्द्र दृष्टि डाल दें, तो सारे पाप उसी क्षण धुल जाएँगे और निर्भय परमानन्द उनका स्थान ले लेगा। यदि उन विशाल भुजाओं ने मुझे भर लिया, तो यह शरीर उसी क्षण तीर्थ बन जाएगा और कर्म-बन्धन ढीले पड़ जाएँगे। तब श्रीकृष्ण मुझे एक ही शब्द से पुकारेंगे — ‘काका!’ — और मेरा जन्म सार्थक हो जाएगा; क्योंकि धिक्कार है उस जन्म को जिसे भगवान् अपना नहीं मानते।

न तस्य कश्चिद् दयितः सुहृत्तमो

न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।

तथापि भक्तान् भजते यथा तथा

सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२ ॥

na tasya kaścīd dayitaḥ suhṛttamo na cāpriyo dveṣya upekṣya eva vā tathāpi bhaktān bhajate yathā tathā sura-drumo yadvad upāśrito ‘rtha-daḥ

अर्थ: उनका न कोई प्रिय है और न परम सुहृद्, और न कोई अप्रिय, द्वेष्य अथवा उपेक्षा के योग्य; फिर भी वे अपने भक्तों को उसी भाव से भजते हैं जिस भाव से भक्त उन्हें भजते हैं, जैसे कल्पवृक्ष उसी को फल देता है जो उसके पास जाकर माँगता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 38, श्लोक 22)

यहीं अक्रूरजी इस अध्याय के गूढ़तम सत्य को छू लेते हैं। भगवान् पक्षपाती नहीं हैं; न कोई चहेता है जिसे पुरस्कार देना हो, न कोई शत्रु जिसे दण्ड, क्योंकि कोई प्राणी उनसे बाहर है ही नहीं। और ठीक इसी समदर्शिता के कारण उनका उत्तर इतना सटीक होता है: जो जीव जिस भाव से उनकी ओर बढ़ता है, वे उसी माप में अपने को लौटा देते हैं — जैसे कल्पवृक्ष उसी के हाथ में फल रखता है जो पास आकर माँगे। शत्रु का भेजा दूत, शत्रु के ही काम से आकर, स्वजन की भाँति स्वीकार होता है — इसलिए नहीं कि उसका कार्य भुला दिया गया, अपितु इसलिए कि भगवान् उस प्रेम का उत्तर देते हैं जिसे वह पथिक मार्ग भर साथ लिए आया था।

एक आशा और उन्होंने स्वयं को दी: कि यदुश्रेष्ठ बड़े भैया मुस्कुराकर झुके हुए मुझे गले लगाएँगे, जुड़े हाथ थामकर भीतर ले जाएँगे और सत्कार के बाद पूछेंगे कि कंस स्वजनों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है।

ब्रज की धूल में चरण-चिह्न

इसी प्रकार सारे मार्ग श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए श्वफल्क-पुत्र गोकुल जा पहुँचे, और उसी समय सूर्य अस्ताचल को छूने लगा। वहाँ गोष्ठ में उन्होंने ब्रज की भूमि पर अंकित भगवान् के चरण-चिह्न देखे — उन चरणों के, जिनकी निर्मल धूलि को समस्त लोकपाल अपने मुकुटों पर धारण करते हैं — कमल, जौ और अंकुश के चिह्नों से युक्त, मानो पृथ्वी ने आभूषण पहन रखे हों।

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः

प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।

रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत

प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥ २६ ॥

*tad-darśanāhlāda-vivṛddha-sambhramaḥ premṇordhva-romāśru-kalākulekṣaṇaḥ rathād
avaskandya sa teṣv aceṣṭata prabhor amūny aṅghri-rajāmsy aho iti*

अर्थ: उस दर्शन के आह्लाद से उनकी आतुरता और बढ़ गई, प्रेम से रोमांच हो आया और नेत्र अश्रुओं से भर गए; वे रथ से कूद पड़े और उन चरण-चिह्नों में लोटने लगे, यह कहते हुए — ‘अहो! ये तो मेरे प्रभु के चरणों की रज हैं!’ (स्कन्ध 10, अध्याय 38, श्लोक 26)

इसके बाद शुकदेवजी अपने राजा-श्रोता की ओर मुड़कर उसी क्षण को हर मनुष्य-जीवन की कसौटी बना देते हैं।

देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।

सन्देशाद् यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥

*dehaṁ-bhṛtām iyaṁ artho hitvā dambhaṁ bhiyaṁ śucam sandeśād yo harer liṅga- darśana-
śravaṇādibhiḥ*

अर्थ: देहधारियों का इतना ही प्रयोजन है कि वे दम्भ, भय और शोक छोड़कर, श्रीहरि के श्रीविग्रह के दर्शन और उनकी महिमा के श्रवण आदि के द्वारा वही भाव-दशा अर्जित करें जो आज्ञा पाने के क्षण से अकूरजी को प्राप्त हुई थी। (स्कन्ध 10, अध्याय 38, श्लोक 27)

गोदोहन-स्थल पर दोनों भाई

और तब, व्रज में, उन्होंने उन्हें देख ही लिया — गोदोहन-स्थल पर आए श्रीकृष्ण और बलराम, पीत और नील वस्त्र धारण किए, शरत्कालीन कमलों-जैसे नेत्रों वाले।



गोदोहन-स्थल पर अकूरजी दोनों भाइयों को देख ही लेते हैं — एक श्याम, एक गौर; वनफूलों की मालाएँ पहने, मरकत और रजत-पर्वत-से देदीप्यमान।

वे अभी किशोर ही थे — एक श्याम, एक गौर; लम्बी भुजाओं और मनोहर मुख वाले, शोभा के धाम, गजशावकों-सा पराक्रम लिए हुए। ध्वज, वज्र, अंकुश और कमल के चिह्नों वाले उनके चरण जहाँ पड़ते, व्रज-भूमि को सुशोभित कर देते, और उनकी चितवन करुणा भरी मुस्कान के साथ आती। स्नान किए हुए, निर्मल वस्त्रों में, पुण्य-गन्ध लगाए, रत्नहार और वनमाला पहने वे अपनी मनोहर क्रीड़ा में लगे थे। किन्तु ये दोनों किशोर, शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं, वस्तुतः आदिपुरुष थे — जगत् के कारण और स्वामी, संसार के कल्याण हेतु बलराम और केशव रूप में अवतीर्ण; मरकत-पर्वत और स्वर्णमण्डित रजत-पर्वत की भाँति खड़े वे अपनी ही प्रभा से सब दिशाओं का अन्धकार हर रहे थे।

साष्टांग प्रणाम और आलिंगन

अकूरजी रुके नहीं। स्नेह से विह्वल होकर वे रथ से कूद पड़े और बलराम तथा श्रीकृष्ण के चरणों में दण्ड की भाँति गिर पड़े। आनन्द के आँसुओं से आँखें ढक गई, शरीर पुलकित हो उठा, और कण्ठ ऐसा रूँध गया कि अपना नाम तक न बता सके। प्रणतवत्सल भगवान् ने उन्हें तुरन्त पहचाना, चक्र-चिह्नित हाथ से अपनी ओर खींचा और प्रसन्न होकर गले लगा लिया। फिर महामना संकर्षण ने भी झुके अतिथि को हृदय से लगाया, उनके जुड़े हाथ अपने हाथों में लिए और छोटे भाई सहित उन्हें घर ले चले।



कण्ठ रूँध जाने से अपना नाम तक न बता पाने वाले अकूरजी दण्ड की भाँति चरणों में गिरते हैं; श्रीकृष्ण चक्र-चिह्नित हाथ से उन्हें उठाते हैं और बलरामजी भी हृदय से लगाते हैं।

नन्दजी के घर में आतिथ्य

भीतर पहुँचकर शास्त्रोक्त सारा सत्कार उन्हें अर्पित हुआ। बलरामजी ने कुशल-यात्रा पूछी, श्रेष्ठ आसन दिया, विधिपूर्वक चरण धोए और मधु, घृत तथा दही का मधुपर्क दिया। अतिथि को गौ भेंट हुई, थके अंगों का संवाहन हुआ, और बहुगुणयुक्त पवित्र अन्न श्रद्धापूर्वक सामने रखा गया। भोजन के पश्चात् परम धर्मज्ञ बलरामजी ने मुखवास, सुगन्ध और माला देकर उन्हें फिर आनन्दित किया।



सारा सत्कार हो चुकने पर नन्दजी बोलते हैं — स्वागत के शब्द नहीं, अपितु निर्दय कंस के राज्य में रहते यदुवंशियों की चिन्ता।

तभी नन्दजी बोले, और उनके पहले शब्द स्वागत के नहीं, कंस के राज्य में रहते यदुवंशियों की चिन्ता के थे।

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ।

कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥

papraccha sat-kṛtaṁ nandaḥ kathaṁ stha niranugrahe kaṁse jīvati dāśārha sauna-pālā ivāvayaḥ

अर्थ: सत्कार पाए हुए अतिथि से नन्दजी ने पूछा — हे दाशार्ह! निर्दय कंस के जीवित रहते आप लोग कैसे निर्वाह कर रहे हैं, कसाई के हाथों में पड़ी भेड़ों के समान? (स्कन्ध 10, अध्याय 38, श्लोक 41)

नन्दजी ने आगे कहा — जिसने अपनी ही रोती बहिन के शिशुओं का वध कर डाला, ऐसे पेट भरने वाले दुष्ट की प्रजा का कुशल कैसा? नन्दजी से भी इसी स्नेह से कुशल पूछा जा चुका था; और सत्य तथा मधुर वचनों के इस आदान-प्रदान में अक्रूरजी की सारी थकान जाती रही।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. दर्शन की पात्रता तड़प है, पुण्य नहीं। अक्रूरजी अपने अतीत में कोई ऐसा सुकर्म, तप या दान खोजते हैं जो इस कृपा का कारण बने, और उन्हें कुछ नहीं मिलता। उनके पास जो है, वह ऐसा हृदय है जो श्रीकृष्ण का चिन्तन छोड़ ही नहीं पाता। कृपा कभी परिश्रम की मजदूरी नहीं होती।
2. वे सबके लिए सम हैं, फिर भी कभी निर्वैयक्तिक नहीं। भगवान् किसी का पक्ष नहीं लेते, इसीलिए हर जीव के प्रति उनका उत्तर ठीक उतना ही होता है: कल्पवृक्ष कुछ नहीं छिपाता, फिर भी देता केवल फैले हाथों में ही है। भक्ति उन तक पहुँचने का हमारा ढंग है, जो पहले से ही सर्वत्र हैं।
3. अनचाहा कार्य भी कृपा का द्वार बन सकता है। अक्रूरजी उसी राजा को आशीर्वाद देते हैं जिसकी आज्ञा ने उन्हें इस मार्ग पर डाला, क्योंकि वही उन्हें प्रभु के चरणों तक ले जा रही है। जो परिस्थितियाँ हमने नहीं चुनीं, वे प्रायः हमें वहीं पहुँचा देती हैं जहाँ मन जाना चाहता था।
4. उनके चरणों की धूलि ही भक्त की सम्पत्ति है। व्रज की भूमि पर अंकित पवित्र चिह्नों को अक्रूरजी निहारते भर नहीं रह जाते; वे गिरकर उनमें लोटने लगते हैं। जो श्रद्धा शालीन बनी रहे, वह अभी प्रेम नहीं बनी।
5. अतिथि-सत्कार स्वयं धर्म है। परम धर्मज्ञ बलरामजी अतिथि के चरण धोते हैं, मधुपर्क देते हैं, गौ भेंट करते और स्वयं अन्न परोसते हैं। जगत् के स्वामी आतिथ्य का उपदेश उसे करके देते हैं।

एक भक्तिमय चिन्तन

यहाँ सबसे अधिक हृदय को छूता है यह, कि कुछ घटित होने से पहले ही कितना कुछ घटित हो जाता है। एक पुरुष साधारण मार्ग पर रथ हाँकता है, और हमें आधे दिन उसके मन के भीतर का दृश्य दिखाया जाता है। वह स्वयं पर सन्देह करता है, फिर उसे सुधारता है, उन चरणों का स्मरण करता है, और सोचता है कि कहीं दूतकर्म विरुद्ध न गिना जाए। वह पहुँचा भी नहीं, और यात्रा पूजा बन चुकी है। हमारा अधिकांश जीवन पहुँचने

में नहीं, चलने में ही बीतता है — भगवान् के विषय में सुनने और उन्हें देख पाने के बीच। अकूरजी दिखाते हैं कि उस अन्तराल को किससे भरा जाए: वे उसे स्मरण से इतना भर देते हैं कि स्मरण स्वयं तेजोमय हो उठता है — इसीलिए चरण-चिह्न दिखते ही उनसे खड़ा नहीं रहा जाता, और प्रभु दिखते ही बोला नहीं जाता।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज कोई साधारण यात्रा चुनिए — कार्यस्थल तक का पैदल मार्ग, घर लौटने का रास्ता, या वह काम जिसे आप टालना चाहते थे — और उसे वैसे ही तय कीजिए जैसे अकूरजी ने किया। सारा मार्ग प्रभु से भर दीजिए: उनके स्वरूप का स्मरण कीजिए, किसी प्रिय लीला में मन लगाइए, और उनसे कहिए कि आप क्या चाहते हैं। पात्रता पर सन्देह उठे तो उसका उत्तर अकूरजी की भाँति दीजिए — इस विश्वास के साथ कि उनकी कृपा आपके अतीत से बड़ी है। आरम्भ धीरे-धीरे जपते हुए कीजिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

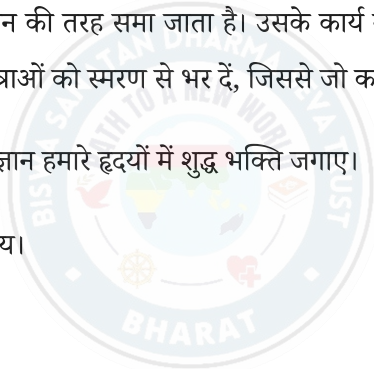
उपसंहार

यहाँ एक सत्य सबसे ऊपर खड़ा है: जो प्रभु न किसी का पक्ष लेते हैं और न बैर रखते हैं, वे प्रत्येक हृदय को ठीक उसी भाव से उत्तर देते हैं जिससे वह उनके पास आता है। अत्याचारी का बुलावा लेकर चला दूत सन्ध्या-बेला में व्रज पहुँचता है, चरण-चिह्नों की धूल में रोता है, और दोनों भाइयों की बाँहों में स्वजन की तरह समा जाता है। उसके कार्य ने यह अर्जित नहीं किया; उसकी तड़प ने इसे बुला लिया। हम भी अकूरजी से यही सीखें कि अपनी यात्राओं को स्मरण से भर दें, जिससे जो काम हमें आगे ले जाए वही उनके चरणों तक का मार्ग बने।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), अड़तीसवाँ अध्याय।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust.
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में किया गया मौलिक एवं निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी और लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं तथा उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा उसके अनुमोदन का कोई संकेत अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-38-akruras-arrival-in-vrindavana-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

